बिज़नेस स्टैंडर्ड

पुरानी समस्या से निजात

भारत लंबे समय से अपने वित्तीय क्षेत्र को पारदर्शी बनाने और काले धन पर लगाम लगाने के लिए 'मॉरीशस के रास्ते' होने वाले वित्तीय लेनदेन पर अंकुश लगाना चाहता था। काफी प्रतीक्षा के बाद आखिरकार अब वह वक्त करीब आ गया है। तीन दशक पहले हुए दोहरे कर वंचना समझौते (डीटीएए) की बदौलत हिंद महासागर का यह छोटा सा द्वीप राष्ट्र लंबे समय तक देश में पूंजी की आवक का पसंदीदा जरिया बना रहा। वर्ष 2000 से 2015 के बीच देश में आने वाली विदेशी पूंजी का एक तिहाई हिस्सा इसी रास्ते आया। उसमें से कुछ पूंजी तो सामान्य वैश्विक पूंजी थी जिसने भारतीय बाजार में आने के लिए अनुकूल रास्ता चुना लेकिन यह संदेह बरकरार रहा कि इस पूंजी में बड़ा हिस्सा उस काले धन का भी है जो घूमफिरकर वापस देश में आ रहा है। परंतु अब सरकार ने इस समझौते पर नए सिरे से चर्चा करके यह क्षमता हासिल कर ली है कि वह अप्रैल 2017 के बाद खरीदे जाने वाले शेयरों की बिक्री से मॉरीशस में होने वाले पूंजीगत लाभ पर कर लगा सके। इस समझौते से होने वाले लाभों को भी संशोधन के जरिये सीमित किया गया।

नए समझौते में एक प्रावधान यह सुनिश्चित करने का भी है कि दिखावटी कंपनियां डीटीएए का लाभ न लेने पाएं। केवल उन्हीं कंपनियों को डीटीएए का लाभ मिलेगा जिन्होंने बीते 12 महीने में मॉरीशस में 27 लाख रुपये से अधिक की राशि खर्च की होगी। डीटीएए में संशोधन करने वाले समझौते पर भारत और मॉरीशस ने बीते मंगलवार को हस्ताक्षर किए। इसे बहुत सावधानी से तैयार किया गया है ताकि न्यूनतम व्यवधान उत्पन्न हों।

पहले दो सालों के दौरान कर दर को सामान्य दर का आधा रखा गया है जबकि पूर्ण दर वित्त वर्ष 2019-20 के बाद लागू होगी। इस खामी को दूर करने के लिए सरकार को पूरा श्रेय दिया जाना चाहिए। भारत द्वारा काले धन पर शिकंजा कसने की बात कहने के बाद यह मार्ग खासतौर पर समस्या बना हुआ था। पहले भी इस रास्ते से निपटने की कोशिशें की गईं लेकिन कोई फायदा नहीं हुआ। शायद इसके लिए शेयर बाजार के प्रभावित होने की आशंका जिम्मेदार थी। बहरहाल, समझौते में संशोधन की खबर सामने आने के बाद बाजार ने सकारात्मक संकेत नहीं दिया लेकिन उसकी निराशा भी नहीं झलकी।

ऐसा इसलिए भी हुआ होगा क्योंकि यह एक उचित खामी को दूर करने का प्रयास है। धीरे-धीरे कर लगाने की बात ने भी बाजार का मिजाज ठंडा रखा है क्योंकि इसकी बदौलत वैध कंपनियां अपनी कर योजना में समय रहते बदलाव कर लेंगी। ऐसे में यह सच है कि सरकार को आर्थिक सहयोग एवं विकास संगठन (ओईसीडी) के सदस्य देशों के साथ बेस इरोजन ऐंड प्रॉफिट शिफ्टिंग (बीईपीएस) समझौते पर हस्ताक्षर के चलते पेशकदमी करनी पड़ी लेकिन फिर भी इतने सुगढ़ तरीके से योजना बनाने और क्रियान्वयन का पूरा श्रेय उसे दिया जाना चाहिए।

अब अन्य कम कर दर वाले क्षेत्रों पर ध्यान दिया जाना चाहिए जिनके साथ भारत का ऐसा ही समझौता है। अच्छी बात यह है कि सिंगापुर के साथ कर रियायत समझौता मॉरीशस डीटीएए से जुड़ा हुआ है। ऐसे में अब चूंकि मॉरीशस वाला रास्ता बंद हो गया है तो सिंगापुर में भी ऐसे निवेश से जुड़े लाभ खत्म होने शुरू हो जाएंगे। यह उम्मीद भी की जानी चाहिए कि डीटीएए में सुधार के साथ और सामान्य कर वंचना नियमों (जीएएआर) के क्रियान्वयन के साथ देश की कर व्यवस्था 21वीं सदी की ओर बढ़ रही है।

दैनिक भास्कर

कानूनी उपायों से तेज होती परिवर्तन की रफ्तार

- **विराग गुप्ता**

प्राचीन काल से भारतीय समाज स्मृति, श्रुति, धर्म और अन्य परंपरागत नियमों से रूपांतरित होता रहा है। उपनिवेश काल में यह काम पश्चिमी अवधारणा व कानून से हुआ। स्वतंत्र भारत में धार्मिक नियमों को संहिताबद्ध करने और सकारात्मक पहल से समाज में परिवर्तन आया। जैसे हिंदू विवाह अधिनियम 1955 से पति-पत्नी एक ही जाति के होने की पूर्व शर्त खत्म हो गई।

सत्तर के दशक में जनहित याचिका की अवधारणा ने भी सामाजिक परिवर्तन की गति को तेज किया। बाल और बंधुआ मजदूरी, कारावास भुगत रहे कैदी व प्रकारांतर से उनके परिजनों और महिलाओं की सामाजिक स्थिति में काफी सकारात्मक बदलाव लाया गया। आर्थिक उदारीकरण के बाद नैसर्गिक संसाधनों के बंटवारे में सामाजिक हित और व्यावसायिक हित में संतुलन के जरिये इस बदलाव को गति मिली। इससे शासकीय नीति-निर्धारण में समाज की भूमिका बढ़ी। मनरेगा और खाद्य सुरक्षा बिल जैसे कानूनी उपायों से भी सामाजिक न्याय और प्रकारांतर से बदलाव को गति दी गई।

सूचना का अधिकार जैसे कानून सामाजिक कार्यकर्ताओं के लिए बदलाव लाने के बहुत अच्छे औजार साबित हो रहे हैं। इनकी सहायता से संविधान में दिए गए मूलभूत अधिकारों को सुनिश्चित किया जा रहा है। इन मूलभूत अधिकारों का लक्ष्य ही सामाजिक बदलाव और सकारात्मक परिवर्तन है। स्वतंत्रता का अधिकार, शोषण के खिलाफ अधिकार, कोई भी धर्म अपनाने की स्वतंत्रता, संस्कृति व शिक्षा का अधिकार और इन सारे अधिकारों को लागू करने के लिए संवैधानिक उपायों का सहारा लेने का अधिकार- ये सारे मूलभूत अधिकार सुनिश्चित कर सामाजिक बदलाव की मुहिम छेड़ी जा रही है। चाहे फिर समान गौत्र में विवाह का मुद्दा हो या मंदिरों में महिलाओं के प्रवेश का।
इस बीच, सरकार द्वारा बेवजह मुकदमे और अपील दायर करने पर लगाम के लिए राष्ट्रीय मुकदमा नीति 2010 और 2015 बनाई गई है, जिसके प्रभावी पालन से फिजूल के मुकदमे खत्म हो सकते हैं। देश में 6612 से अधिक केंद्रीय कानून है, जिनमें 380 आजादी से पहले के बनाए कानून हैं। सरकार ने 125 पुराने कानूनों को समाप्त किया है, जिसके अलावा 1053 कानूनों को खत्म करने का प्रस्ताव राज्यसभा में लंबित है। फिजूल के मुकदमों का खत्म होना भी सामाजिक सौहार्द्र को बढ़ावा देने वाला होगा।

लोक अदालत और पंचायती व्यवस्था से मामलों का शीघ्र और प्रभावी निराकरण हो रहा है। पिछले 20 वर्षों में 15.14 लाख लोक-अदालतों के माध्यम से 8.25 करोड़ से अधिक मामलों का निष्पादन हुआ है। हरियाणा में पानीपत के गांव अदियाना में पंचायती व्यवस्था के प्रभावी क्रियान्वयन से मुकदमें तथा अपराध लगभग ख़त्म हो गए हैं।

बार काउंसिल के चेयरमैन मनन कुमार मिश्रा ने वकालत के पेशे को 30 फीसदी दागी लोगों से मुक्त कराने की मुहिम चलाकर बार को भी जबावदेह बनाने की शुरुआत की है। दिल्ली की अदालत ने ट्रैफिक उल्लंघन के आरोपी इंजीनियर को सड़क सुरक्षा का सामाजिक उत्तरदायित्व सौंपकर और बॉम्बे उच्च न्यायालय ने छेड़-छाड़ के आरोपी नवयुवकों को सामुदायिक सेवा का दंड देकर मुकदमों को कम करने की सार्थक सामाजिक पहल की है। सुप्रीम कोर्ट साल में 193 दिन, हाईकोर्ट 210 दिन और जिला कोर्ट औसतन 245 दिन काम करते हैं। इन छुट्टियों पर हमेसा सवालिया निशान लगाया जाता है। अब इलाहाबाद उच्च न्यायालय के जजों द्वारा इस बार गर्मी की छुट्टियों में भी काम करने के फैसले से उत्तरप्रदेश में 8 हजार से अधिक विचाराधीन कैदियों बाहर निकलने की उम्मीद जगी है। गुजरात में सेवानिवृत्त जजों की सहायता ली जा रही है, जिससे 5-6 लाख छोटे मुकदमों का निस्तारण हो सकता है। न्यायिक व्यवस्था में सुधार से जीडीपी में 3 फीसदी तक की वृद्धि होने के साथ सामाजिक सद्भाव भी बढ़ेगा।
- विराग गुप्ता (ये लेखक के अपने विचार हैं।)

दैनिक जागरण

उच्च शिक्षा का उद्देश्य

आजकल देश में उच्च शिक्षा की कमियों को दूर कर उसमें गुणवत्ता लाने की चर्चा बड़े जोरों पर है। इसके लिए अनेक स्तरों पर तरह-तरह की कवायद की जा रही है, परंतु इस प्रयास के लिए अपनाए गए संदर्भ और मानक हमारे अपने नहीं हैं। गुणवत्ता के सरोकार के बारे में हमारा ध्यान उनअंतरराष्ट्रीय मानदंडों की ओर ही जा रहा है जो अन्यत्र देश काल के संदर्भ में ठीक हो सकते हैं, लेकिन यह जरूरी नहीं कि वे हर जगह ठीक हों। बावजूद इसके लगभग उन्हीं को पृष्ठभूमि में रख कर गुणवत्ता की पैमाइश की जा रही है और उनके मानकों पर संतुष्ट होने पर शिक्षण संस्थाओं को ए/बी/सी/डी ग्रेड दी जा रही है। प्राध्यापकों की पदोन्नति में एपीआइ की गणना हो रही है और इसके चलते आजकल शिक्षा संस्थानों में हम शोध, संगोष्ठी और प्रकाशन की तत्वहीन मारामारी का अद्भुत नजारा देखने को बाध्य हो रहे हैं। गुणहीन शोध पत्रिकाओं की भीड़ लग रही है और शोध में नकल और चोरी की घटनाएं दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही हैं। शिक्षा के परिसर में आज पढ़ने आने वाला युवा 'विद्यार्थी ' नहीं, बल्कि अच्छे 'परीक्षार्थी ' बनने के लिए ही यत्नशील रहता है। सफलता यानी अच्छे अंक पाने पर उसका जोर निरंतर बढ़ता जा रहा है। ट्यूशन या कोचिंग की जरूरत और उसकी बढ़ती व्यावसायिक गिरफ्त को देखने से यही लगता है कि प्रचलित शिक्षा अधूरी, दोषपूर्ण और अपर्याप्त है। इसलिए सही अर्थों में व्यक्तित्व और कुशलता की वृद्धि की दृष्टि से अव्यावहारिक है।

हम देख रहे हैं कि उच्च शिक्षा किस तरह संचालित हो रही है और किस मुकाम पर पहुंच रही है। यह किसी भी तरह संतोषजनक नहीं है। हम अपने विश्वविद्यालयों की तुलना हार्वर्ड, ऑक्सफोर्ड और एमआइटी जैसी विदेशी संस्थाओं से करना चाह रहे हैं। उनकी ही तर्ज पर जांच-परख करने पर हमारे श्रेष्ठ विश्वविद्यालय या उच्च शिक्षा के अन्य संस्थान फिसड्डी ही साबित होते हैं और हम अंतरराष्ट्रीय रैंकिंग की सूची में कहीं ठहरते ही नहीं हैं। सूची में ऊपर आने के लिए जो निष्कर्ष तय किए गए हैं वे कुछ सार्वभौम पैमानों को हमारे सामने रखते हैं। मसलन-छात्र संख्या, कक्षा में छात्रों और अध्यापक के बीच का अनुपात, संस्था की प्रतिष्ठा, विदेशों के साथ संबंध, अंतरराष्ट्रीय प्रकाशनों की संख्या इत्यादि। यदि गौर से देखें तो इनमें कई निष्कर्ष हमारे भारतीय समाज के लिए असामान्य हैं और प्रासंगिकता की दृष्टि से एक हद तक संदिग्ध भी, लेकिन हम उन्हें अपनाने के लिए अंधी और अंतहीन दौड़ में शामिल हो रहे हैं। आज विभिन्न अंतरराष्ट्रीय संगठन प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से दिशा-निर्देश देते हैं, जिनके अनुसार नीति निर्धारण किया जाता है। कौन से विषय आगे बढ़ेंगे और उन्हें किन मुद्दों पर शोध के लिए क्या सहायता मिलेगी? यह सब उन्हीं नीतियों पर निर्भर करता है न कि स्थानीय दशाओं या क्षमताओं के ऊपर। स्वायत्तता कितनी दी जाए? यह हमारा अपना निर्णय नहीं होता है। संस्थाओं को स्वायत्तता प्राप्त नहीं है। उनके ऊपर तमाम बंधन दर बंधन की ऐसी झड़ी लगी है कि विश्वविद्यालय हर बात के लिए मुंह देखता है और सरकारी आदेश की बाट जोहता है। सरकार का तंत्र हावी है और नौकरशाही का प्रभाव शैक्षिक प्रशासन को दूषित और बाधित कर रहा है। ऐसे में हर चीज अपनी जगह स्थिर है, गतिहीन है।

भौतिक या प्राकृतिक विज्ञानों, समाज विज्ञानों और मानविकी के विभिन्न विषयों को एक ही तराजू से नहीं तौला जा सकता। इन सबमें ज्ञान की प्रकृति और उनके निर्माण और प्रयोग में सांस्कृतिक संदर्भ की प्रासंगिकता अलग-अलग है। अब उसमें कौशल विकास भी जुड़ रहा है, ज्ञान का उत्पादन भी। और ज्ञान का उपयोग भी। उपनिवेशवादी दौर के बाद साम्राज्यवादी मानसिक चिंतन से आजादी आवश्यक है। आज अनुकरण की इच्छा बलवती है और हम बिना सोचे समझे जो कुछ भी कहीं भिन्न दिखता है, अपनाने दौड़ते हैं। 'उनके पास है तो हमारे पास क्यों न हो ' इस तर्क का अनुसरण करते हुए अपने को पश्चिमी विश्वविद्यालयों का क्लोन बनाते जा रहे हैं। प्रतिस्पर्धा जीवन की धुरी बनाती जा रही है। इस प्रक्रिया में पूंजीवाद ही एक मात्र मार्ग दर्शक है। विश्वविद्यालय भी औद्योगिक संस्थाओं की तर्ज पर चलाए जाने लगे हैं। नौकरशाही उनके पूरे परिवेश पर हावी है। शिक्षा संस्थाओं का संचालन औद्योगिक संगठन या घरानों की तर्ज पर हो रहा है। इस मॉडल का शिक्षा की गुणवत्ता पर नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है। भारतीय संविधान में न्याय, स्वतंत्रता, समता और बंधुत्व की चर्चा है। इसमें जिस मनुष्य की संकल्पना की गई है वह उच्च शिक्षा केंद्रों से एक भिन्न तरह के मानस के निर्माण की अपेक्षा करता है, लेकिन आज जिस तरह क्वालिटी को क्वांटिटी में बदलने की कोशिश हो रही उससे कई खतरे पैदा हो रहे हैं और गुणवत्ता को नुकसान पहुंच रहा है। यदि वैश्विक ही महत्वपूर्ण है तो स्थानीय का क्या होगा?

शिक्षा एकरूपी नहीं होनी चाहिए। सिखाने वाला संगठन ऐसा हो जो स्वतंत्रता/स्वायत्तता पर बल दे। उसे बदलाव के लिए तत्परता होना चाहिए। तभी रचनाशीलता आ सकेगी। उसे 'रिजिड 'नहीं होना चाहिए। शैक्षिक संस्थान वस्तु नहीं पैदा करते वे मनुष्य रचते हैं और ज्ञान के द्वारा उसका परिष्कार और परिमार्जन करते हैं। हमें विचार करना चाहिए कि उच्च शिक्षा का उद्देश्य क्या है? हम किस तरह के मनुष्य की परिकल्पना कर रहे हैं? हर शिक्षा संस्था अपनी शक्ति और विशिष्टता के साथ उन क्षेत्रों को रेखांकित करे जिनमें प्रामाणिक रूप से उसके द्वारा योगदान संभव है। उसका उद्यम यदि उस क्षेत्र विशेष में केंद्रित हो तो बात बन सकती है। मोटे तौर पर कह सकते हैं कि गुणात्मक शिक्षा की यह स्वाभाविक अपेक्षा होती है कि उसमें छात्र और अध्यापक, दोनों ही ज्ञान की प्रक्रिया के साथ गहराई से जुड़ें। गुणवत्ता की तलाश के लिए दरकार है आंतरिक पुनराविष्कार की।

[लेखक प्रो. गिरीश्वर मिश्र, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा के कुलपति हैं]

THE TIMES OF INDIA

A bankable law: The Bankruptcy Code fills a crucial gap in India's economic architecture

The Rajya Sabha passed the Insolvency and Bankruptcy Code 2016 on Wednesday, paving the way for perhaps the most important economic legislation initiated and seen through by the Narendra Modi government. In about 18 months, the government tapped expertise within and outside government to introduce a comprehensive legislation to deal with insolvencies of firms, partnerships and individuals. A timely and transparent resolution of insolvencies is a vital element in a country's economic architecture. India now has a code that allows this.

Prior to this legislation, laws to deal with insolvencies were fragmented, which led to interminable delays. Consequently, it takes a little over four years now to resolve an insolvency. Delays also eat into the extent of recovery. In India, the recovery rate is 25.7 cents on a dollar as compared to the South Asian average of 31.8 cents. The prevailing system has made India a laggard even in its neighbourhood and made it difficult to do business in the country. To rectify this, the new code has repealed two colonial era laws and amended 11 others. What has emerged is a coherent approach towards a comprehensive insolvency and bankruptcy code.

One of the long-term benefits of this code should be the emergence of a deeper and wider bond market. India's banks often overextend themselves on account of deficiencies in financial markets. In this context, with the intention of encouraging bond market development, government has done well to push the interests of creditors and employees ahead of its own in the event of an insolvency. The code also seeks to provide protection for employees when their employers fail to meet their legal obligations. Given the asymmetry between the two sides, the cover provided to employees by the bankruptcy code should deter deviant behaviour, such as was widely reported in case of Kingfisher.

The bankruptcy code will have prospective effect. India's existing bad loan problems of banks will continue to go through the prevailing processes of resolution. But the introduction of a new code should help the entire financial sector. If the goals underlying the bankruptcy code are to be actualised, the Modi government must not drop the ball now. The code envisages the creation of a new regulator and even new professions to manage an insolvency process. Existing judicial mechanisms will have additional responsibilities and will need to be strengthened. The effort will be worthwhile as the outcome will strengthen the Indian economy.

The Indian EXPRESS
JOURNALISM OF COURAGE

No small change

Amended tax treaty with Mauritius promises more transparency, reduced evasion, shored up revenues.

The government's decision to amend the tax treaty with Mauritius, which from April 1 2017, will allow India to tax capitals gains arising from the sale of shares of an Indian resident company, is welcome. Under the original bilateral agreement between the two nations, capital gains from the sale of securities can only be taxed in Mauritius. However, the gains from the sale of shares held for less than 12 months are treated as short-term capital gains within India and attract a 15 per cent short-term capital gains tax. This has created an anomaly, thanks to a double taxation avoidance agreement with Mauritius, that meant business entities operating out of Mauritius escaped even paying short-term capital gains tax on share transfers. This has been exploited even by domestic Indian investors, who have resorted to routing their equity investments via Mauritius to avoid the tax liability at home.

Under the amended treaty, the government has provided a level playing field for domestic and foreign investors, and the incentive for an Indian investor to channel investments via Mauritius has been neutralised. In fact, the amended tax regime will also apply to capital gains of Singapore-based companies, due to the direct linkage of the Singapore double taxation avoidance agreement (DTAA) clause with the Mauritius DTAA. These two locations account for roughly two-thirds of all investments, using P-notes, into India. P-notes are financial instruments used by overseas investors who wish to invest in India's capital markets without registering themselves with the Securities and Exchange Board of India. The government's move coincides with the global outrage against tax avoidance in the wake of the Panama Papers revelations. With the tax arbitrage possibility doused, it can be expected that foreign portfolio investment data would improve in quality as it is likely to reflect faith in the strength of India's macroeconomic fundamentals.

Notably, instead of a sudden and retrospective change, the government has chosen to give ample time for all investors to adjust. The amended tax provisions will come into effect 11 months later and existing investors, who acquire shares before April 1 2017 will not be taxed. Further, firms in Mauritius and Singapore will be taxed at a concessional rate for the first two years, until March 31 2019, to help them transition to the new regime. This amendment follows on Finance Minister Arun Jaitley's 2016-17 budget announcement on implementation of the general anti-avoidance rules (GAAR) from April 1 2017. These rules are intended to check tax avoidance for investments by entities based mainly in overseas tax havens. Overall, the tax amendment will improve transparency, shore up revenues and reduce tax evasion in the long term

THE ECONOMIC TIMES

Why the government should revitalise PPP models

By Aman Singh

India is poised for an unprecedented growth in infrastructure. The infrastructure outlay in this year's Union Budget alone is Rs 2.2 lakh crore. Over the next 5-7 years, India will make investments of about $1 trillion in new infrastructure.

This coupled with its commitment to the United Nations of cutting emissions intensity by 33-35% by 2030 from 2005 levels, India will need $2.5 trillion over the next 15 years.

All of this cannot be through public spending. This represents a strong need for scaling up private financing through public-private partnership (PPP). However, headwinds in the form of regulatory, financial and policy challenges confront PPP today.

PPP is an amorphous concept and means different things to different stakeholders. Some see it as a way of using private sector capital. But more holistically, PPP is also an opportunity to leverage expertise, experience and efficiency of the private sector to deliver public services and infrastructure with equitable sharing of risk and return. It is more about 'hows' rather than 'whats'.

PPP, with focus on defining output specifications, is a means of purchasing 'services' than only creating assets. While all the three Ps in PPP are important, 'partnership' is paramount.

Is PPP an innovation of recent vintage? While PPP gained traction in the 1990s, it has existed for ages in forms different from what we see today. India witnessed an early form of PPP in 1853 when the railways were introduced through private initiatives. After the Great Indian Peninsula Railway introduced the first railways near Mumbai, other companies built railways in other parts connecting the major port cities of Calcutta, Madras and Bombay.

Akin to the build-operate-transfer model of PPP, the then-government encouraged private investors to set up railways against a guaranteed annual return on capital. The government allowed the companies to acquire land.

While operations remained under the company, government owned the infrastructure.

Thereafter, there was a general decline in interest in PPPs and till the 1990s, only sporadic attempts were made.

In the post-liberalisation era, India witnessed a spate of PPPs with rising private sector participation in infrastructure. The PPP model got a major fillip in 2000 when the then-Atal Bihari Vajpayee government ushered in the National Highway Development Programme. Successive governments have since created a conducive ecosystem for PPPs through the appropriate policy framework and regulations. Today, PPP is a vital pillar of infrastructure development.

However, PPP projects in India are still affected by various challenges. We are yet to see an independent PPP regulator.

There is inadequate rigour in project development and preparatory activities. Challenges of financial closure and lack of institutional capacities to carry out PPP projects exist.

Against this backdrop, the recommendations of Kelkar Committee set up to revitalise the PPP model assume great importance. Apart from making reformative recommendations to liven up the somewhat dwindling interest in PPP in key sectors such as power, roads, ports, railways and airports, the panel has called for institutional interventions, such as creation of an overarching umbrella organisation, 3P-India, to further mainstream PPPs.

Timely and innovative measures by the government, such as the introduction of a hybrid annuity model in the road sector, are expected to be a shot in the arm for the investor community in the PPP space.

To make PPP models flourish, a lot rests on the reputation that the political dispensation of the day carries. A confluence of factors like the rule of law, transparency, ease of doing business and image of political leadership decides the quantum and cost of investment by the private sector.

Globally, 'perceived ability' of the government to fulfil responsibility as a partner goes a long way in attracting PPP investment. That is why Greece, with a 173% debt-to-GDP ratio, has defaulted on repayment while Japan with 250% continues to do well.

PPP may not be a panacea. But if used judiciously, it can surely address many of the challenges facing the infrastructure sector today. Government should develop simple yet robust and unambiguous PPP structures that are economically beneficial, financially feasible and politically acceptable.

Government officers should avoid the temptation to see themselves as PPP pundits. They must remain avid students and learn to ask the right question at the right time. It is important not to blindly follow an existing successful template, but to customise PPP as per the requirements of a project. Without a proper suitability test, such as a value-for-money analysis, PPP should not be considered at all.

The writer is principal secretary to the chief minister, Chhattisgarh